एक ग़रीब की आत्म-कथा

(१)

जमादार गणेशसिंह ने बिशनदास के कमरे के सामने पहुँचकर कहा, "बिशनदास जागते हो ?"

बिशनदास अपना सिर घुटनों में दबाये कुछ सोच रहा था। जमादार की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ा और बोला, "हाँ, जागता हूँ। कितने बजे होंगे ?"

जमादार ने उसकी ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखा और ठण्डी साँस भर उत्तर दिया, "तीन।"

"तो वह घड़ी निकट आ गई, अब केवल कुछ ही घण्टे बाक़ी हैं।"

"हूँ।"

इस समय जमादार की आँखों में आँसू थे, हृदय में वेदना, रुद्ध कण्ठ से बोला, "अगर दरख़ास्त मंजूर हो जाती तो मैं महावीर को लड्डू चढ़ाता।"

बिशनदास को हत्या के अपराध में फाँसी का हुक्म हो चुका था। यह रात्रि उसके जीवन की अन्तिम रात्रि थी। जमादार गणेशसिंह को उससे बहुत स्नेह हो गया था। वह चाहता था कि यदि बिशनदास छूट जाय तो इसे अपना बेटा बना लूँ। परन्तु यह लालसा मन ही मन में रह गई और वह भयानक समय निकट आ गया। गणेशसिंह का हृदय बैठा जाता था, परन्तु बिशनदास

के मुख पर विषाद न था। असीम निराशा ने उसके डाँवाडोल हृदय पर सन्तोष और शान्ति का मरहम रख दिया था। वह इतना सुन्दर और भोला-भाला था कि उस पर हत्या का सन्देह तक न होता था।

मृत्यु के निकट पहुँचकर भी मनुष्य ऐसा स्थिर रह सकता है, यह गणेश-सिंह के लिए नया अनुभव था। उसका स्वर भारी हो गया और नेत्रों में आँसू छलकने लगे। सहसा उसने आँखें पोंछ दीं और ठण्डी साँस भरकर कहा, "बिशनदास, क्या ही अच्छा होता यदि तुम यह हत्या न करते।"

बिशनदास बैठा हुआ था, यह सुनकर खड़ा हो गया और जोश से बोला, "परन्तु मैं निर्दोष हूँ।"

"निर्दोष हो! यह तुम क्या कह रहे हो?"

"सच कह रहा हूँ।"

जमादार ने पैंतरा बदलकर पूछा, "तो फिर यह फाँसी क्यों पा रहे हो?

"यदि चाहता तो कम से-कम-इससे बच सकता था।"

जमादार चकित होकर बोला, "तुमने यत्न क्यों न किया?"

"इसमें एक रहस्य है।"

"क्या मुझे भी नहीं बता सकते?"

बिशनदास थोड़ी देर चुप रहा और कुछ सोचता रहा, जिस प्रकार कोई आत्म-हत्या से पहले सोचता है। इसके पश्चात् बोला, "मेरी इच्छा न थी कि यह रहस्य मेरे मुख से प्रकट होता और इसी लिए मैं इसे अपने हृदय में दबाये हुए फाँसी के तख़्ते की ओर जा रहा हूँ। परन्तु तुमने मुझसे जो सहानुभूति की है उसने मुझे विवश कर दिया है कि यह रहस्य तुम्हारे सामने खोल दूँ।"

गणेशसिंह दत्तचित्त होकर सुनने लगा। बिशनदास ने अपनी कहानी कहना आरम्भ किया—

जमादार! मैं उन अभागे मनुष्यों में से एक हूँ जो संसार में बिना बुलाये आ जाते हैं और जिनके लिए माता-पिता के पास खाने-पीने का कोई प्रबन्ध नहीं होता। मेरे माता-पिता निर्धन थे। दिन-रात मज़दूरी करते थे, परन्तु फिर भी उनकी आवश्यकताएँ पूरी न होती थीं। सदा उदास रहा करते थे। हम तीन भाई थे, चार बहनें। हमारे माता-पिता से ख़र्च सँभाले न सँभलता

था। प्रायः हम पर झुँझलाते रहते थे। मुझे अपने बचपन का कोई दिन याद नहीं जब मुझे मारा-पीटा न गया हो। और यह व्यवहार अकेले मुझी से नहीं, सारे बहन-भाइयों के साथ होता था। हम प्यार और दुलार की आँखों के लिए तरसते रहते थे। परन्तु इस अमोल वस्तु से हमारा प्रारब्ध वञ्चित था। जब हम दूसरे बच्चों के साथ अपनी अवस्था की तुलना करते तो हमारे छोटे-छोटे हृदय सहम जाते थे, परन्तु सिवा चुप रहने के कोई उपाय न था। इसी प्रकार हम बड़े हुए और माता-पिता के साथ मज़दूरी करने लगे। इस समय तक हम सबका ब्याह हो चुका था। यह अभागा भारत ही ऐसा देश है, जहाँ रोटी खाने को प्राप्त हो या न हो, परन्तु माता-पिता सन्तान का ब्याह कर देना आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं। जान पड़ता है, इसके बिना उनकी गति न होगी।

मैंने मज़दूरी के साथ साथ रात को पढ़ना भी आरम्भ कर दिया। इससे मेरे माता-पिता आगबभूका हो गये। उनका ख़याल था, इससे मेरा सिर फिर जायगा, और मैं उनके काम का न रहूँगा। इसलिए वे मेरी पुस्तकें फाड़ दिया करते थे। परन्तु मैं उनके विरोध में धीरज न छोड़ता था, दूसरे दिन और पुस्तक ले आता था। इस प्रकार मैंने कुछ पुस्तकें पढ़ लीं, और एक भट्टे पर मुंशी हो गया। मेरे माता-पिता के क्रोध की सीमा न थी। वे मेरी ओर इस क्रोध से देखते थे, मानो मैंने किसी की हत्या कर डाली है। यहाँ तक कि एक दिन मेरे पिता ने मुझे गन्दी गालियाँ भी दीं। मेरा रक्त उबलने लगा। यह गालियाँ बचपन में एक साधारण बात थी। उस समय हृदय में क्रोध और दुःख के लिए कोई स्थान न था। परन्तु अब मैं चार अक्षर पढ़ गया था, मैं उसे सहन न कर सका और स्त्री को लेकर किराये के मकान में चला गया। उस समय मेरी आयु उन्नीस वर्ष के लगभग थी।

(२)

जमादार! तीन वर्ष निकल गये। मैं बढ़ता बढ़ता एक अच्छे पद पर पहुँच गया। उस समय मैं एक प्रेस में ३०) मासिक पर नौकर था। मैं और मेरी स्त्री आनन्द के मद में मतवाले थे। यद्यपि यह वेतन अधिक न था, परन्तु मेरे लिए, जिसके भाई पाँच-छः आने रोज़ पर धक्के खाते फिरते थे, यह नौकरी

एक ऐसे उच्च पद के बराबर थी जिसको ऐश्वर्य्य भी ईर्ष्या की दृष्टि से देखता हो। परन्तु क्या पता था कि यह आनन्द अस्त होते हुए सूर्य्य की लाली है, जिसके पीछे अँधेरी रात छिपी है।

प्रेस के मैनेजर को मुझ पर पूर्ण विश्वास था। वह मुझे ऐसा भलामानस समझता था कि मेरे काम की पड़ताल भी नहीं किया करता था। और इतना ही नहीं, मेरी भलमंसी की सारे कर्मचारियों पर धाक थी। वह मुझे देवता समझते थे। उस समय मेरा हृदय सचाई का भाण्डार था, आँखें सन्तोष का नमूना। धर्म से पतित होने के कई अवसर हाथ आये और निकल गये, परन्तु मेरा चित्त कभी डाँवाडोल नहीं हुआ। उन दिनों को जब याद करता हूँ तो कलेजे पर छुरियाँ चल जाती हैं। अब कोई शक्ति यदि एक ओर संसार भर की सम्पत्ति और ऐश्वर्य्य उँड़ेल दे, और दूसरी ओर वे दिन रख दे तो मैं उन दिनों को छोड़ कर दूसरी ओर देखना भी पसन्द न करूँगा। परन्तु क्या काल कता है?

कहते हैं, भगवान् को जब किसी पर विपत्ति भेजनी होती है तब पहले उसकी बुद्धि पर पर्दा डाल देते हैं। मेरी भी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। एक छोटी-सी रक़म पर मन फिसल गया। मैनेजर की प्रशंसा और भरोसे ने मेरा साहस बढ़ा रक्खा था। मैंने आगा-पीछा सोचे बिना डुबकी लगा दी। परन्तु बाहर निकला तो किनारे का पता न था। मेरा पाप प्रकट हो गया। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसी ने आकाश से पृथ्वी पर फेंक दिया हो। मैं रोते रोते मैनेजर के पैरों से लिपट गया। परन्तु उसे मुझ पर दया न आई। झिड़क कर बोला "बस, अब तुम्हारा यहाँ रहना असम्भव है। मुझे यह पता न था कि तुममें यह गुण भी भरे होंगे।"

(३)

जमादार! जब मैं प्रेस से निकला तो संसार मेरी दृष्टि में शून्य हो रहा था और मेरा अन्तःकरण मुझे बार बार धिक्कार रहा था। उस समय मुझे पता लगा कि कोई शुद्ध हृदय मनुष्य जब पहली बार पाप का शिकार होता है तो उसके हृदय की क्या अवस्था होती है। मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि मेरा प्रेम

का पाप मेरा पहला और अन्तिम पतन होगा ! परन्तु शोक ! समाज ने मेरा पवित्र सङ्कल्प इस प्रकार नष्ट कर दिया, जिस प्रकार छोटे बालक फूल की पत्तियों को पाँव तले मसल डालते हैं और उनके विषय में कुछ सोचने की परवा नहीं करते। मैंने तीन मास तक यत्न किया, परन्तु मुझे कोई नौकरी न मिली। घर में जो चार पैसे जमा किये थे, वह भी ख़र्च हो गये। मैं प्रातःकाल निकलता, सारा दिन शहर की मिट्टी छानता और साँझ को घर लौटता। मेरी स्त्री पूछती, काम बना ? मेरे कलेजे में बर्छियाँ चुभ जातीं। लज्जा-भरी आँखों से उत्तर देता, नहीं। यह उन दुर्दिनों का नितनेम था जिनको थोड़े दिनों के सुख की स्मृति ने और भी दुःखमय बना दिया था, जैसे थोड़े समय का प्रकाश अन्धकार को और भी घना बना देता है।

मेरी स्त्री के पास कुछ आभूषण थे, वह बेचने पड़े। उनको बनवाते समय उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था। निर्धन घराने की लड़की के लिए यह ऐसा सौभाग्य था जिस पर अप्सरायें भी ईर्ष्या करती हैं। मुझे वह समय कभी नहीं भूल सकता, जब उसने काँपते हुए हाँथों से वह आभूषण मुझे बेचने के लिए दिये थे। उस समय उसका मुख कपास के फूलों की नाईं पीला था, आँखों में आँसू भरे थे। जमादार ! मेरे जीवन में वह क्षण अतीव दुखदायी था। उस दिन के पश्चात् मैंने अपनी स्त्री के मुख पर कभी मुस्कराहट नहीं देखी, मानों आभूषणों के साथ उसके मुख की कांति भी बिक गई। मेरा प्रारब्ध और भी अन्धकारमय हो गया।

मैंने बहुत यत्न किया, परन्तु मेरा प्रारब्ध मेरी प्रत्येक चेष्टा को व्यर्थ बनाने पर तुला हुआ था। यहाँ तक कि तीन दिन भूखे रहते हो गये। मैं अपनी दृष्टि में आप लज्जित होने लगा। चौथे दिन जब बाहर निकला तो मेरी स्त्री ने कहा, "मेरी मानो तो जब तक अच्छी नौकरी न मिले तब तक कोई साधारण ही कर लो।"

इन शब्दों में कितनी निराशा थी, कितना दुःख। मेरा मन बेबस हो गया, आँखों में आँसू छलछला आये। एक सौदागर की दूकान पर जाकर बोला, "आपको किसी आदमी की ज़रूरत है ?"

सौदागर ने मुझे सिर से पाँव तक देखा, परन्तु इस प्रकार जैसे ईसका

बकरे को देखता है, और कहा, "क्या कर सकोगे ?"

डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। मैंने समझा, काम बन गया। नम्रता से उत्तर दिया, "मैं उर्दू-हिन्दी पढ़-लिख सकता हूँ।"

"तो देखो, वह बिलों की नकलें पड़ी हैं। रजिस्टर देख देख कर छाँटते जाओ कि कौन कौन से बिल की रकम वसूल होना बाकी है।"

मैंने काम आरम्भ कर दिया, और बिजली की सी तेज़ी से। यदि प्रेस में होता तो उस काम में कम से कम तीन दिन लगते। परन्तु यहाँ नई नौकरी थी, सन्ध्या तक सारे बिल छाँट डाले और दूकानदार से कहा, "काम पूरा हो गया।"

उसने मेरी ओर सन्तोषपूर्ण दृष्टि से देख कर उत्तर दिया, "तुम बहुत ही समझदार हो। मेरा नौकर एक मास तक नौकरी छोड़ जानेवाला है। अपना पता छोड़ जाओ, मैं तुम्हें सूचना दे दूँगा।"

मेरी आशाओं पर पानी फिर गया। जब कोई भूला हुआ यात्री टिमटिमाते हुए दीपक को देखकर तेजी से पाँव उठा रहा हो और एकाएक वह दीपक, उसकी अन्तिम आशा भी, वायु के झोंकों से बुझ जाय तो जो दशा उसके हृदय की हो सकती है वही दशा मेरे हृदय की हुई। मैं घर जाकर टूटी हुई चारपाई पर गिर पड़ा और बच्चों की नाईं सिसकियाँ भर भर कर रोने लगा। मेरी स्त्री मेरी दशा को भाँप गई थी, चुपचाप मुँह फुलाये बैठी रही। उसकी यह रुखाई मेरे घावों पर नमक का काम कर गई। परन्तु इतना ही नहीं, कुछ देर बाद बोली, "क्या सो गये हो ?"

आवाज़ में घृणा मिली हुई थी, नमक पर मिर्च छिड़की गई। मैंने अपराधी की नाईं उत्तर दिया, "नहीं।"

"मालिक-मकान आया था। कह गया है, परसों तक तीन महीनों का किराया पहुँचा दो, नहीं तो नालिश कर दूँगा।"

"अच्छा।"

"देवकी अपने रुपये माँगती है, कहती थी, बरतन का मुँह खुला हो पर कुत्ते को तो शर्म चाहिए।"

मैं चुप रहा।

"कुन्दन आज फिर पड़ोसी के घर से रोटी उठा लाया है। तुमसे क्या कहूँ, मारे लज्जा के प्राण निकल गये, परन्तु तुमको इतनी समझ भी नहीं कि कोई हलका ही काम कर लो। अब मुन्शीगिरी न मिले तो क्या भूखों मरेंगे?"

परन्तु मुझे मजदूरी करना पसन्द न था। अपने पिता के शब्दों में मैं पढ़-लिख कर काम का न रहूँगा, मेरा मस्तिष्क बिगड़ गया था। रस्सी जल गई थी, परन्तु ऐंठन बाकी थी।

(४)

जमादार! दूसरे दिन मैं अँधेरे मुँह ही घर से निकल गया। मुझे स्त्री से डर लगने लगा था। मनुष्य बाहर अपमानित होता है तो घर की ओर भागता है। वहाँ उसे एक प्रकार का सहारा मिल जाता है। परन्तु उस मनुष्य के दुर्भाग्य का क्या ठिकाना है जो अपमान से भाग कर घर की ओर जाय और वहाँ उससे भी बड़ा अपमान उपस्थित हो। मेरी यही दशा थी। मैं सोच रहा था कि अब मेरे लिए कोई रास्ता है या नहीं। सहसा निराशा में आशा की किरण दिखाई दी। मुझे अपने मित्र ज्ञानचन्द का ध्यान आया। प्रेस की नौकरी के दिनों में मेरा उससे अच्छा मेलमिलाप था। वह मेरी भलमंसी पर मोहित था। प्रायः कहा करता, "बिशनदास! कुछ दिनों की बात है, फिर मैं यह नौकरी तुम्हें कभी न करने दूँगा।"

यह बातें उसके हृदय से निकलती थीं। वह एक धनी-मानी पुरुष का बेटा था। उसे खाने-पीने की परवा न थी। उसके दरवाजे पर मोटरें खड़ी रहती थीं। परन्तु किसी छोटी-सी बात पर पिता-पुत्र में अनबन हो गई, इसलिए उसने प्रेस में नौकरी कर ली थी। मगर वह जानता था कि मजदूरी का दौर थोड़े ही दिन रहेगा। मुझसे प्रायः कहा करता था; "तुम्हें दूकान खोल दूँगा, यह क्लर्की पत्थर के साथ सिर फोड़ने के समान है।" मैं उसका धन्यवाद करके चुप रह जाता था। एक दिन पता लगा, उसका पिता मर गया है ज्ञानचन्द लाखों का मालिक बना। उस दिन उसने बिदा होते हुए अपने शब्दों को फिर दोहराया, और उसी प्रेम, उसी जोश से।

मैं उसके घर की ओर चला। परन्तु दरवाज़े पर पहुँच कर अन्दर जाने

का साहस न हुआ। मेरे कपड़े तार तार हो रहे थे। मुँह पर दारिद्रय बरस रहा था। विचार आया, इस अवस्था में मित्र के सामने जाना उचित नहीं। परन्तु फिर सोचा, इसके सिवा उपाय ही क्या है। हिचकिचाते हुए पाँव आगे बढ़े। एक नौकर ने देख कर कहा, "क्यों? किसे देखते हो?"

मैंने उत्तर दिया, "बाबू ज्ञानचन्द हैं?"

"उनसे मिलना है?"

"हाँ!"

'तो वह सामने कमरे में हैं, चिक उठाकर चले जाओ।"

मैं अन्दर पहुँचा। ज्ञानचन्द सिगार पी रहा था। उसके ठाट-बाट को देख कर मुझ पर रोब छा गया। उसने थोड़ी देर मेरी ओर देखा, और फिर बड़े सेठों की नाईं ऐंठ कर पूछा, "हैलो! मिस्टर बिशनदास! आज कैसे भूल पड़े? यार अजीब आदमी हो। पास रहते हो, फिर भी कभी नहीं आते। क्या कुछ नाराज हो?"

मैंने उसकी आँखों की ओर देखा। वहाँ कभी प्रेम का वास था, परन्तु आज उसके स्थान में अभिमान बैठा था। मैंने सिर झुका कर उत्तर दिया, "आपसे नाराज़गी कैसी? वैसे ही नहीं आ सका।"

"तो अब आया करोगे?"

ज्ञानचन्द ने एक अत्युत्तम बढ़िया सिगार-केस से एक क़ीमती सिगार निकाला और मेरे सामने रख कर बोला, "पियो।"

"मैंने कभी पिया नहीं।"

ज्ञानचन्द ने हँस कर कहा, "माफ करना, मुझे ख़्याल नहीं रहा कि तुम सिगार नहीं पीते। चाय मँगवाऊँ?"

"नहीं।"

"तो फिर तुम्हारी क्या ख़ातिर की जाय?"

"आपकी दया चाहिए।"

"दया को फेंको चूल्हे में। ज़रा सामने देखो, दो तस्वीरें पैरिस से आई हैं, सच कहना, कैसी हैं?"

"बहुत ही सुन्दर, ऐसी तसवीरें सारे शहर में न होंगी।"

"सवा तीन सौ में ख़रीदी हैं।"

"परन्तु चीज़ें भी बहुत बढ़िया हैं, (बात का प्रकरण बदल कर) मैं इस समय इसलिए....."

जान पड़ता है, ज्ञानचन्द मेरे हृद्गत विचार को भाँप गया था। यह जतला कर कि उसने मेरी बात नहीं सुनी है वह बात काटकर बोला, "यार तुमसे क्या पर्दा है। इस क़िस्म के ठाट-बाट से भरम बना रक्खा है, वर्ना पैसे पैसे को मोहताज हो रहा हूँ। पिताजी ने, मालूम होता है, हवा ही बाँध रक्खी थी। मगर मुझसे ऐसा होना मुश्किल है। जी चाहता है, मकान बेचकर कहीं निकल जाऊँ और दस रुपये की नौकरी कर लूँ।"

मैं चुप रह गया। ज्ञानचन्द की बातों ने मुझे निरुत्तर कर दिया। जिस प्रकार प्यासा मृग रेत के थलों को सरोवर समझ कर चौकड़ी भरता हुआ आता है और निकट पहुँच कर निराश हो जाता है, वही दशा मेरी हुई। आशा के पौधे को निराशा की गर्जती लहरों ने निगल लिया। मैं कैसी आशा से इधर आया था, परन्तु उस पर पानी फिर गया। मैं निराश होकर उठ खड़ा हुआ और पृथ्वी की ओर देखते हुए बोला, "तो आज्ञा है?"

ज्ञानचन्द के मुख पर विजय के चिह्न दिखाई दिये। उसने समझा, यह निपट मूर्ख है। मेरा मन्त्र चल गया। जो गुड़ से मरे उसे विष क्यों दिया जाय। जोश से कहने लगा, "तो कभी-कभी मिलते रहा करो।"

मैं गङ्गा के तट से प्यासा वापस हुआ। मेरा सत्यपरायणता का प्रण टूट गया। इस स्वार्थी कृतघ्न कपटी संसार में यह निर्बल दीपक कामना और मनोरथ के झोंकों के प्रबल थपेड़ों से कब तक सुरक्षित रह सकता है? मेरे नेत्रों में नई ज्योति उत्पन्न हुई। संसार नवीन रूप में दिखाई देने लगा, जहाँ हर एक आदमी रुपये-पैसे पर इस प्रकार टूटता है, जैसे चील मांस पर। धर्म मुझे वायु से हलका और पानी से पतला प्रतीत होने लगा, इस समय मेरी आँखें खुल चुकी थीं। कभी मैं इसे प्राणों से प्यारा समझता था, उस समय मैं नितान्त मूर्ख था।

(५)

जमादार! मैं और मेरी स्त्री चार दिन के भूखे थे। मेरा फूल के समान

बच्चा रोटी के टुकड़े के लिए तरसता था। मालिक-मकान किराये के लिए तगादे करता था। इस दुःख के तूफ़ान से अशान्त नदी में धर्म की नौका कब तक ठहर सकती थी? मैं रात के समय एक सेठ के मकान में दबे पाँव घुस गया, और उसकी बैठक में पहुँचा। दूर आँगन में बच्चे शोर करते थे। नौकर अपने अपने काम में लगे थे। चारों ओर ऐश्वर्य्य बरस रहा था। मुझे यह दृश्य एक सङ्गीतमय स्वर्गीय स्वप्न-सा प्रतीत हुआ, हृदय और मस्तिष्क अपने आपको भूलकर इसमें मग्न हो गये। क्या इस दुःखमय संसार में कोई ऐसा स्थान भी है, जहाँ ऐश्वर्य्य नाचता और सुख-सम्पत्ति मुस्कराती है। सहसा मुझे अपने घर की याद आ गई। हृदय में भाला-सा चुभ गया। यहाँ आनन्द खेलता है, वहाँ प्रारब्ध रोता है। मैंने चारों ओर व्याकुल आँखें दौड़ाईं। वह एक अलमारी पर जाकर ठहर गईं। तीर निशाने पर बैठा। मैंने मन में कहा, इस पर हाथ चलाना व्यर्थ न जायगा।

मैंने जूता उतार दिया, और बड़ी सावधानी से आगे बढ़ा। प्रेस की नौकरी के दिनों ने मैशीनों के खोलने-खालने का ढङ्ग सिखा दिया था। वह इस समय काम आ गया। अँधेरे में दिया मिल गया। मैंने जेब से एक हथियार निकाला, और ताला तोड़कर अलमारी खोली। उस समय मेरा कलेजा ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। एकाएक आशा का चमकता हुआ मुख दिखाई दिया। पाप के वृक्ष को सफलता का फल लग गया था। मैंने नोटों का पुलन्दा उठाया, और कमरे से निकलकर भागा जैसे कोई पिस्तौल लेकर मारने को पीछे दौड़ रहा हो।

परन्तु अभी मकान की चहारदीवारी से बाहर न हुआ था कि दुर्भाग्य ने रास्ता रोक लिया। मालिक-मकान उस समय किसी ब्याह से वापस आ रहा था। उसने मुझे दौड़ते हुए देखा तो कड़ककर कहा, "कौन है?"

मेरा लहू सूख गया। कुछ उत्तर न सूझा। गिरफ़्तारी के भय ने मुँह बन्द कर दिया। मेरे चुप रहने से मालिक-मकान का सन्देह और भी बढ़ गया। ज़रा तेज़ होकर बोला, "तू कौन है?"

झूठ बोलना भी सहज नहीं। इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता है मैं अबके भी उत्तर न दे सका। मालिक-मकान मुझे गर्दन से पकड़ कर उसी कमरे में वापस ले गया, और मेरे हाथ में नोटों का पुलन्दा देखकर आगबभूका

हो गया। सहसा उसकी दृष्टि अलमारी की ओर गई, जो किसी के दुर्व्यसनामय हस्तक्षेपों का साक्ष्य थी। उसने मुझसे नोट ले लिये, और मेरे हाथ-पाँव बाँध कर मुझे एक कोने में डाल दिया। दूसरे दिन मुक़द्दमा पेश हुआ। मैंने प्रारम्भ ही में अपराध स्वीकार कर लिया। दो वर्ष कारावास का दण्ड मिला। परन्तु मेरे लिए वह दण्ड मृत्यु से कम न था। मेरी स्त्री और बच्चे का क्या होगा? जब यह विचार आता तो जिगर पर आरा चल जाता, कलेजे पर साँप लोट जाता। वहाँ ऐसे क़ैदियों की कमी न थी जो दिन-रात आनन्द से तानें लगाते रहते थे। वह हँस-हँस कर कहा करते थे, हम तो ससुराल आये हुए हैं। अफ़सरों की गालियाँ उनके लिए मा के दूध के समान थीं। मेरे लिए उनका सङ्गीत असह्य था। उनकी बातचीत मुझे विष में बुझे हुए बाणों के समान चुभती थी। मुझे उनकी आँखें देखकर बुख़ार चढ़ जाता था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मुझे खा ही जायँगे। चिड़िया बाज़ों में फँसी थी।

इन भयङ्कर मनुष्यरूप बघेलों में रहकर ज्यों-त्यों करके दो वर्ष काट दिये, और घर की ओर चला। उस समय मेरे पाँव तेज़ थे, परन्तु हृदय उदास था। पता नहीं, स्त्री और बच्चे की क्या दशा है। मकान पर पहुँचकर मैं सन्नाटे में आ गया। मेरी स्त्री का पता न था। सहसा विचार आया, वह अपने पिता के घर चली गई होगी।

जमादार! मेरे पास कुछ रुपये थे, जो मुझे छूटते समय मिले थे। वही मेरी पूँजी थी। मैंने बच्चे के लिए कुछ खिलौने ख़रीदे। और भागा-भागा अपनी ससुराल पहुँचा। परन्तु निराशा मुझसे पहले पहुँच चुकी थी। मेरी स्त्री वहाँ भी न थी। मैंने चाव से ख़रीदे हुए खिलौने तोड़ डाले, और सिर में मिट्टी डाल ली।

छः मास का लम्बा समय मैंने उसकी खोज में बिता दिया। परन्तु उसका कोई पता न चला। मैं माँगकर पेट भर लेता, और फिर उसकी खोज में लग जाता। रस्सी जल चुकी थी, अब उसका बल भी जल गया। हार कर मैंने अपना नगर छोड़ दिया, और यहाँ आकर रहने लगा। मेरी आशायें मर चुकी थीं; मन टूट गया था। पाप ने सिर उठाया। कुछ लुच्चे-लुङ्गाड़े साथी मिल गये, मैं बहाव में बहने लगा।

जमादार ! मैं अब पहला बिशनदास न था। मेरा हृदय धर्म को छोड़ कर अधर्म का अखाड़ा बन गया, पापों का भारी बोझ उस पर पड़ने लगा। इस पाप-भूमि की ओर देखकर कभी मेरा हृदय काँप जाता था। परन्तु अब ऐसा प्रतीत होता था, मानों इसके चप्पे चप्पे से मैं परिचित हूँ। मैं जुआ खेलता था, शराब पीता था, चोरी करता था, परन्तु लोग मुझे भलमंसी की मूर्त्ति कहते थे। पीतल पर सोने का मुलम्मा था।

रात का समय था। मैं शराब के मद में चूर सौन्दर्य्य के बाज़ार की ओर जा रहा था। वहाँ, जहाँ कटाक्ष बिकते हैं और कुलीनता के गले पर छुरी चलती है, जहाँ विनाश नाचता है और पाप जीवित जाग्रत रूप धारण करके तालियाँ बजाता है। रात अधिक चली गई थी। चारों ओर सन्नाटा था। सहसा एक मकान की बैठक से गाने की सुमधुर तानें सुनाई दीं। मैं तेज़ी से ऊपर चढ़ गया। परन्तु अभी कमरे में न पहुँचा था कि किसी ने कलेजे पर धधकते हुए अङ्गारे रख दिये। वह गानेवाली मेरी स्त्री थी, जिसने अपने सतीत्व को रुपयोंकी तोल बेच दिया था और मेरे सम्मान तथा मेरी कुलीनता को निर्दयता से पाँव तले कुचल डाला था। दूसरे दिन मैंने उसे क़त्ल कर दिया।

(६)

जमादार ! अब कहो, यदि मैं अदालत में कह देता कि वह मेरी विवाहिता स्त्री थी तो क्या जोश और आत्मसम्मान का उद्र इस फाँसी की रस्सी को मेरे गले से वापस न खीच सकता था ? मुझे आठ-दस वर्ष का कारावास हो जाता, अथवा अधिक से अधिक काले-पानी का दण्ड हो जाता। यह सब सम्भव था, परन्तु क़ानून मुझे मृत्युदण्ड कदाचित् नहीं दे सकता था। इसे मैं पूर्णतया समझता हूँ। परन्तु मेरे दिल ने इसे पसन्द नहीं किया कि मैं भरी-अदालत में अपनी स्त्री के पाप को प्रकट करके उसे कलङ्कित करूँ। और वैसे भी मेरा जी अब इस असार संसार से ऊब गया है। जीवन के थोड़े से वर्षों में बहुत कुछ देख लिया। अब शेष क्या है ? हाँ, तुमसे एक बिनती करता हूँ। हो सके तो जो भारतीय लोग भूखे मरते हुए भी अपने बच्चों का ब्याह करना पुण्य समझते हैं, उनको जीते जी नरक में ढकेल देते हैं, उनके विरुद्ध आवाज़ उठाना। मेरा

जीवन ऐसा दुःखमय न होता और मुझे इस यौवनकाल में डाकुओं और हत्यारों का-सा दण्ड न दिया जाता, यदि मेरे माता-पिता स्वयं भूखे मरते हुए भी मेरा ब्याह न कर देते, और फिर मुझे भी उसी गढ़े में न ढकेल देते। इस अपमृत्यु का कारण उन्हीं की मूर्खता है।

जमादार रोने लगा। यह विनती कैसी शोकमयी थी, मरते हुए युवक की अन्तिम अभिलाषा, टूटे हुए हृदय की करुणामय पुकार, परन्तु सचाई से भरपूर।

दिन के आठ बजे अभागे बिशनदास की लाश फाँसी पर लटक रही थी, परन्तु उसके टूटे हुए हृदय के शब्द अनन्तकाल तक गूँजते रहेंगे।